मध्ययुगीन हिन्दू शिक्षा व्यवस्था

डॉ. राकेश रंजन सिन्हा

एसोशिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कुवंर सिंह महाविद्यालय,
लहेरियासराय, दरभंगा।

प्राचीन हिन्दू शिक्षा प्रणाली और शिक्षा पद्धति मध्ययुग में साथ–साथ प्रचलित रही। इस्लाम के आगमन और उसके प्रारंभिक शासकों द्वारा धार्मिक अत्याचारों के फलस्वरूप प्राचीन भारत के तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला जैसे हिन्दू शिक्षा के सुप्रसिद्ध विद्या केन्द्रों का पराभव हो गया। मंदिरों और मठों के ध्वंस से भी पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था की क्षति हुई, क्योंकि इनके साथ हिन्दु प्राथमिक शिक्षण संस्थाएँ संलग्न थी। परन्तु हिन्दूओं का सामाजिक आधार ठोस होने के कारण इस्लामी शिक्षा व्यवस्था, हिन्दु शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित न कर सकी। राजनैतिक उथल–पुथल केवल नगरों तक सीमित रहती थी। नगरों में हिन्दू शिक्षा व्यवस्था को इस काल में बड़ा आघात पहुँचा, परन्तु गाँव और दूरवर्ती क्षेत्रों में हिन्दू शिक्षण संस्थाएँ बिना किसी व्यवधान के कार्य करती रही। इसके अतिरिक्त कुछ सन्त और दार्शनिक ने हिन्दू शिक्षा पद्धति और संस्कृति को बनाये रखने के लिए अपनी आवाज उठाई। साथ ही साथ विजय नगर के राजाओं, देवगिरी के यादवों, मदुरा के नायकों, त्रावणकोर के राजाओं, राजपूत नरेशों तथा हिन्दू शासकों ने ऐसी शिक्षण संस्थाओं को आश्रय प्रदान किया। इसके अलावा मुगलों के आगमन तथा उसके कुछ शासकों, विशेषकर अकबर और जहाँगीर के द्वारा प्रबुद्ध नीति अपनाये जाने पर हिन्दू शिक्षा को पुनः बल मिला।

मध्यकालीन भारत में हिन्दू शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारत की पद्धति से अधिक अंतर नहीं था। विद्यार्थियों को वेद, पुराण स्मृति, उपनिषद, दर्शनशास्त्र और भेषज की शिक्षा अध्यापक अपने–अपने आश्रमों में देते थे। मुसलमानों द्वारा हिन्दू शिक्षण संस्थाओं को क्षति पहूँचाने के कारण हिन्दूओं की शिक्षा प्रणाली–सामूहिक नहीं रह गई। शिक्षा का विकेन्द्रीकरण हो गया और व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दी जाने लगी। विद्यार्थी कठोर अनुशासन में रह कर अपने गुरुओं की सेवा करते थे। ऐसा समझा जाता है कि प्राचीन काल की अपेक्षा मध्ययुग में अनुशासन उतना कठोर नहीं था।

हिन्दूओं को भी मदरसों में प्रवेश लेने की सुविधा प्राप्त थी जहाँ वे फारसी का अध्ययन प्राप्त करते थे। फारसी के अध्ययन द्वारा उन्हें राजकीय सेवाओं में नियुक्ति प्राप्त करने का अवसर मिलता था, क्योंकि उस समय फारसी ही राजभाषा थी।

मध्यकाल में हिन्दू शिक्षण संस्थाएँ तीन वर्गो में बटी हुई थी–

1. पाठशाला जहाँ प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी।
2. टोल या महाविद्यालय जहाँ उच्च शिक्षा दी जाती थी।
3. व्यक्तिगत शिक्षण संस्थाएँ।

प्राथमिक विद्यालय या पाठशालाएँ मंदिरों के साथ संलग्न होते थे जहाँ प्रारंभिक शिक्षा दी जाती थी। खेतों में फसल कटने के समय दिए गए पारंपरिक अनुदान से गाँवों में विद्यालय की व्यवस्था होती थी। टोल या कॉलेज जिसे असम में गुरुगृह कहते थे, उच्च शिक्षा संस्थान थे, जो अनुदान तथा धर्मदान से चलाए जाते थे। ऐसी संस्थाएँ वैसे महत्पपूर्ण स्थानों में स्थापित की गई थी, जहाँ सवर्ण हिंदुओं की अच्छी आबादी थी और इनमें पंडित लोग संस्कृत के माध्यम से व्याकरण तथा तर्कशास्त्र की शिक्षा देते थे।

उच्च शिक्षा के लिए टोल या चतुष्पदी थे, जिसे चौपारी के नाम से भी पुकारा जाता था। देश के विभिन्न भागों में इस संस्था के भिन्न नाम थे। इन संस्थाओं के छात्र संस्कृत भाषा और साहित्य, पुराण, वेद, दर्शनशास्त्र, आर्युविज्ञान, ज्योतिषशास्त्र, खगोल विद्या आदि का अध्ययन करते थे। अकबर ने बंगाली, उड़िया, हिंदी, पाली आदि क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया था। अकबर ने खगोल विद्या के अध्ययन के साथ ही गणित को अनिवार्य विषय बना दिया था। हिन्दू लोग गणित में विशेष रूप से निपुण होते थे। गणित के कठिन प्रश्नों का समाधान हिन्दू बड़ी निपुणता के साथ मौखिक रूप में ही कर लेते थे। यह देखकर कई यूरोपीय यात्री आश्चर्यचकित रह गए थे। ब्राह्मण खगोल विद्या में बड़े कुशल थे और वे सूर्य ग्रहण या चंद्र ग्रहण के मिनट–मिनट समय का सही अनुमान लगा देते थे। वे मौसम विज्ञान

में भी विशेषज्ञता रखते थे और तूफान आने और वर्षा होने के समय का पूर्वानुमान करते थे। ये महाविद्यालय उन्नीसवीं सदी तक बंगाल, बिहार और पंजाब में चलते रहे थे।

छात्र और अनुसंधानकर्ता विद्या अर्जन के लिए किसी भी कुशल शिक्षक के पास जाते थे, जो इस कार्य के लिए अनुदान और सहायता प्राप्त कर न केवल विद्यालय का भवन तैयार करा देते, बल्कि छात्रो के निवास और भोजन की व्यवस्था भी करते थे। साधारणतः ये विद्यालय भवन मिट्टी से निर्मित होते जिसमें दो पंक्तियों में आठ या दस कमरे ही होते थे। विद्यालय के एक छोर पर वाचनालय का बड़ा कक्ष होता था जो चारों ओर से खुला रहता था।

हिन्दू शिक्षा मूलतः धर्मनिरपेक्ष थी। इसका मुख्य उद्देश्य चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, प्राचीन संस्कृति की रक्षा और समाजिक और धार्मिक कर्तव्यों के पालन के लिए प्रशिक्षण देना था। प्रत्येक छात्र ब्रह्मचर्य धारण कर सादा जीवन व्यतीत करता था। अनुशासन, संयम और स्वालंबन पर विशेष बल दिया जाता था। छात्रों को अपने सामाजिक जीवन में पुत्र, पति और पिता के कर्मो और कर्तव्यों के पालन के लिए प्रशिक्षत किया जाता था।

पाठशाला में प्रथम पाठ के रूप में छात्र को पंडित द्वारा संस्कृत अक्षरों की जानकारी प्रदान की जाती थी। बाद में संयुक्ताक्षर और कठिन शब्द बताएँ जाते थे, फिर पुस्तक से चुने हुए शब्दों को लिखाया जाता था। इस प्रकार उन्हें वर्तनी का ज्ञान हो जाता था और जो शब्द उन्हें लिखाया जाता था उसका अर्थ समझने लगते थ। जैसे ही लिखना पढ़ना आ जाता था छात्रों को व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी और फिर पुराणों का अध्ययन आरंभ किया जाता था। साक्षरता के साथ ही गणित का अध्ययन भी चलाया जाता था। पुराणों का अध्ययन समाप्त करने पर विद्यार्थी उपनिषद और शास्त्र तथा फिर वेदों का अध्ययन भी करते थे।

उस समय पाठशालाओं में प्रारंभिक गणित के ज्ञान के लिए पहाड़ा याद कराने की रोचक पद्धति थी, जिसके अनुसार एक या अधिक कक्षओं के छात्र सामूहिक रूप में बैठ कर सस्वर पाठ करते थे–एक दूनी दो, दो दूनी चार इसी को दूसरा समूह दुहराता और लिखता जाता था।

शिक्षा देने के लिए शिक्षक कोई शुल्क नहीं लेते थे, क्योंकि धर्मशास्त्र के अनुसार शिक्षा देना ही उनका कर्म था। ज्ञानदान श्रेष्ठ कार्य माना जाता था। फलस्परूप सहायता के लिए शिक्षक अमीरों, रईसों और व्यापारियों पर निर्भर होते थे, जिनसे उन्हें यथेष्ठ सहायता मिलती रहती थी।

शिक्षक का उत्तरदायित्व केवल शिक्षा देना ही नहीं था बल्कि विद्यार्थी का सर्वागीण संतुलित विकास भी करना था। इसके बदले में विद्यार्थी गुरु के प्रति श्रद्धावनत रहता और उनके पैर छूकर सम्मान प्रदर्शित करता था। इसके अलावा वह गुरु के घर के अनेक कार्य जैसे कूप से पानी लाना, फर्श साफ करना आदि आदरभाव से पूरा करता था। साथ ही विद्यालय के निमित्त दान प्राप्त करने का कार्य भी विद्यार्थी ही करता था। इस प्रकार से अठारहवीं सदी का यात्री वार्टलोम्यु कहता है, गुरु सदैव समुचित सम्मान प्राप्त करता था, छात्र भी बड़े आज्ञाकारी होते थे और शायद ही कभी वे किसी नियम का उल्लंघन करते थे।

इस काल में हिन्दू शिक्षा विधि में कठिन दंड या यातना की अनुमति नहीं थी। दिन के कार्य में असावधानी, जानबूझ कर गड़बड़ करने या गलत व्यवहार के लिए दंड स्वरूप दोषी छात्र को विद्यालय कार्य की अवधि के बाद कुछ देर के लिए रोक लिया जाता था या किसी पाठ को दस या पंद्रह बार लिखने के लिए कहा जाता था। इससे अधिक कठिन दंड के लिए कान ऐंठ कर चपत लगा दी जाती या उकडू बैठकर दोनों टांगों के बीच से हाथ निकालकर कान पकड़ने की सजा दी जाती थी। कभ–कभी कोई क्रोधी अध्यापक दोषी छात्र को लिटाकर पैर से उसकी छाती दबा दिया करते थे।

स्नातक के लिए शिक्षा की अवधि साधारणतया दस से बारह वर्षो तक होती थी। आचार्यत्व प्राप्त करने के लिए सुप्रसिद्ध विद्वान के सान्निध्य में रहकर कुछ वर्ष अध्ययन करना पड़ता था।

उस समय नियमित रूप से कोई सालाना परीक्षा नहीं होती थी। किसी दिए गए विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेने पर अगली कक्षा के लिए उत्तीर्णता दी जाती थी, इस निर्णय का एकमात्र अधिकार शिक्षक को प्राप्त था। अतएव किसी छात्र का छः महीने में ही अगली कक्षा में चला जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। मिथिला में स्नातक स्तर की शिक्षा पूर्ण करने पर एक विचित्र प्रकार की परीक्षा ली जाती थी, जिसे सलाका परीक्षा कहते थे। इस परीक्षा में एक सुई पांडुलिपि में प्रविष्ट कराई जाती थी। सूई की नोक जिस पृष्ठ पर आकर रूक जाती थी, विद्यार्थी को उसी पृष्ठ की पूर्ण व्याख्या परीक्षा के तौर पर करनी होती थी। ब्रह्मचर्य काल के अध्ययन पूर्ण कर लेने पर समावर्तन नामक एक समारोह करने की प्रथा थी। नियमित रूप में कोई डिग्री नहीं प्रदान की जाती थी, किंतु विद्या अध्ययन समाप्त करने पर कुछ विशिष्ट छात्रों को उपाधियाँ दी जाती थी। ऐसी उपाधियों में सार्वभौम उपाध्याय, महामहोपाध्याय, पोयूषवर्ष और पक्षधर

उल्लेखनीय है। यह भी उल्लेख मिलता है कि किसी ऐसे विद्वान को जो पंडितों तथा जनसाधारण दोनों के प्रश्नों का ठीक उत्तर किसी सभा विशेष में दे सकने में समर्थ हो जाए–उसे सरयात्री की उपाधि प्रदान की जाती थी।

हिन्दू शिक्षा के मुख्य केंद्र जिसे हम विश्वविद्यालय भी कह सकते है, उन्हीं स्थानों पर स्थित थे जहाँ सुप्रसिद्ध विद्वानों का निवास था। इसके लिए हिन्दू लोग तीर्थो तथा अन्य पवित्र स्थानों को पसंद करते थे क्योंकि तीर्थयात्रियों से विशेष सहायता प्राप्त होने की अपेक्षा रहती थी। इस प्रकार अपने जीवन यापन की समस्या से निश्चित होकर वहाँ के शिक्षक विद्या अध्ययन में लीन रहते थे।

मध्यकाल के सुप्रसिद्ध विद्या केंद्रो में बनारस, बंगाल में नदियाँ या नवद्वीप, बिहार में मिथिला, तथा अन्य केन्द्रों में प्रयाग, अयोध्या, श्रीनगर, तिरहुत, थट्टा, मुल्तान, कमरूप और सरहिंद उल्लेखनीय है।

बर्नियर ने बनारस की तुलना यूनान की राजधानी एथेन्स से की है। विद्यार्थी अपने अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करते थे। प्रत्येक गुरु के चार या पाँच शिष्य होते थे और वे लगभग 10 या 12 वर्षो तक शिक्षा ग्रहण करते थे। यद्यपि बर्नियर ने बनारस में संस्थाओं को नहीं देखा, परन्तु वहाँ नियमित रूप से संचालित शिक्षण संस्थाएँ थीं, जैसा कि दूसरे यूरोपीय यात्री ट्रेवर्नियर ने लिखा है। वह 1665 ई0 में बनारस आया। इसने राजा जयसिंह द्वारा स्थापित कॉलेज की सराहना की है।

बंगाल में नदिया शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था, दूर–दूर से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आते थे। यहाँ न्याय दर्शन में विशेष ज्ञान प्राप्त करने लोग आते थे। 16वीं सदी में बृन्दावन दास ने लिखा है कि नदिया में विख्यात विद्वानों और अध्यापकों का आवास था। नदिया में तत्व चिन्तामणि, गीता, भगवत और दूसरे विषय जैसे ज्ञान और भक्ति की शिक्षा दी जाती थी।

उत्तर बिहार में स्थित मिथिला भी प्राचीन काल में सुप्रसिद्ध विद्या केन्द्र रहा था। इसका महत्व पूरे मध्यकालीन युग में भी बना रहा तथा देश के सभी भागों से अनेक छात्र यहाँ तर्कशास्त्र में विशेष अध्ययन के लिए प्रवेशार्थ आते थे। रघुनंदनदास राय, जिसने अकबर के कहने पर दिग्विजय का अभियान किया था, इसी मिथिला का विद्यार्थी रहा था। बादशाह उससे इतने प्रसन्न हुए कि उसे संपूर्ण मिथला नगर भेंट स्वरूप दे दिया, किन्तु आज्ञाकारी विद्यार्थी ने उस भेंट को आदरपूर्वक अपने गुरु महेश ठाकुर को दे दिया। नदिया का महत्व बढ़ जाने से मिथिला का गौरव कम होने लगा और कई छात्र अपना अध्ययन पूर्ण करने के लिए वहाँ से नदिया जाने लगे थे।

अन्य हिन्दू विद्या केन्द्रों में मथुरा, वृंदावन, प्रयाग, अयोध्या, श्रीनगर, मुल्तान और सरहिन्द उल्लेखनीय है। श्रीनगर में कई विद्वान ब्राह्मण थे जो संस्कृत का अध्ययन अध्यापन करते थे। साकी ने अपनी पुस्तक 'मासीर–ए–आलमगीरी में सुल्तान को हिन्दू विद्या का केन्द्र कहा है। इस नगर में समुचे भारत से छात्रगण आते थे और खगोलविद्या, ज्योतिषशास्त्र, गणित, आर्युविज्ञान आदि विषयों का अध्ययन करते थे। सरहिन्द की विशेषता वहाँ स्थित आर्युविज्ञान के विद्यालय से थी, जहाँ संभवः आयुर्वेद पद्धति की शिक्षा दी जाती थी। यह चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन का मुख्य केन्द्र था तथा यहाँ से संपूर्ण साम्राज्य में चिकित्सक बनाकर भेजे जाते थे। सिंघ में थट्टा उच्च शिक्षा का दूसरा मुख्य केन्द्र था।

मध्यकालीन समय में मदुरा दक्षिण का प्रमुख विद्या केन्द्र था। सतहरवीं सदी के आरंभ में वहाँ 10,000 से अधिक छात्र विद्या अध्ययन करते थे। दक्षिण के अन्य हिन्दू विद्या केन्द्रों में चिंगलपुट में कांचीपुरम, उल्लेखनीय है। केरल के राजाओं ने विद्या केन्द्रों को विशेष प्रश्रय दिया था तथा उन्होंने ही कलारी की स्थापना भी की थी। कामरूप हिन्दू विद्य का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। कामरूप के विद्वान नालंदा भी जाते थे तथा गूढ़ विषयों पर वहाँ के पंडितों से तर्क करते थे। कचारी, कामत तथा कोच के शासकों ने भी अपने क्षेत्र में शिक्षा के प्रचार–प्रसार में काफी योग दिया था।

अतः स्पष्ट है कि मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दू शिक्षण–संस्थाओं को विशेष प्रोत्साहन न मिलने पर भी हिन्दू–शिक्षा और साहित्य का विकास मध्य काल में भी होता रहा। हिन्दू शिक्षा–पद्धति वेदों पर आधारित थी। शिक्षा के प्राचीन उद्देश्यों और आदर्शो को बनाये रखा गया। यह शिक्षा–प्रणाली भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ने के कारण समाप्त हो गई।

संदर्भ स्त्रोंतः

1. पी0एल0 रावत–हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजूकेशन,
2. ए0एल0, श्रीवास्तव–मेडिवल इण्डियन कल्चर,
3. विद्याभूषण–हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लॉजिक,

4. जे0एच0 काजिन्स–एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया,
5. जे0एन0सेन,–हिस्ट्री ऑफ एलिमेन्ट्री एजूकेशन इन इण्डिया,
6. एस0एम0जफर–एजूकेशन,
7. एस0के0दास–दि एजुकेशनल सिस्टम ऑफ दि एनशियण्ट हिन्दूज,
8. ए0रशीद–सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डियन कल्चर,
9. युसुफ हुसैन–ग्लिमपसेस ऑफ मेडिबल इण्डियन कल्चर,
10. अबुल फजल, अनुवादक ब्लॉकमैन, आइने–अकबरी, खण्ड– I
11. अबुल–फजल, अनुवादक वेवरिज, अकबरनामा, खण्ड–II
12. अजीज अहमद–इस्लामिक कल्चर इन दि इण्डियन इनवाइरमेंट,
13. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति–डॉ0 लईक अहमद,
14. आर0 के0 मुखर्जी–दि कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ इण्डिया।